SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

समाज, संस्कृति से दूर होती साहित्यिक पत्रकारिता

सुनीता अवस्थी, (Ph.D.), हिंदी विभाग,
सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर, अजमेर, राजस्थान, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author

सुनीता अवस्थी, (Ph.D.), हिंदी विभाग,
सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय,
ब्यावर, अजमेर, राजस्थान, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 08/11/2021
Revised on : -----
Accepted on : 15/11/2021
Plagiarism : 00% on 09/11/2021

Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 0%

Date: Tuesday, November 09, 2021
Statistics: 4 words Plagiarized / 2373 Total words
Remarks: No Plagiarism Detected - Your Document is Healthy.

lkfgfR;d i=dkfjrk % feFk vkSj ;FkkFkZ M. lquhrk voLFkh] ,lks- çksQslj] fganh] jkt-l-egkto]ky;] C;koj] vtesj lkjka'k ftl ek/;e dks xjhcksa]oafprksa dh vkokt cuuk pkfg, ogh tc iFk HkVd tk, rks D;k fd;k tk,\cgqjk"V°h; daifu;ka bruh prqjkbZ ls rkuk ckuk cqurh gSa fd tehu] taxy] tu lc gM+is tkrs gSa vkSj dksbZ lquokbZ ughA njvly ehfM;k vkt foKkiuksa ds lgkjs pyus dk cgkuk cukrk gS vkSj tedj 'kks"kdksa ds lkFk [kM+k gSA,sls esa lkfgR;dkjksa dk nkf;Ro gS fd og vkokt cusaAijUrq rFkkdfFkr fnYyh esa cSBs ys[kdks ds eqgj yk[kksa ds vokMZ vkSj fons'k ;k=k ds çyksHku us cUn dj fn, gSaA nq[kn gS fd vktknh ds igys ds

शोध सार

जिस माध्यम को गरीबों,वंचितों की आवाज बनना चाहिए वही जब पथ भटक जाए तो क्या किया जाए? बहुराष्ट्रीय कंपनियां इतनी चतुराई से ताना बाना बुनती हैं कि जमीन, जंगल, जन सब हड़पे जाते हैं और कोई सुनवाई नही। दरअसल मीडिया आज विज्ञापनों के सहारे चलने का बहाना बनाता है और जमकर शोषकों के साथ खड़ा है, ऐसे में साहित्यकारों का दायित्व है कि वह आवाज बनें। परन्तु तथाकथित दिल्ली में बैठे लेखको के मुँह लाखों के अवार्ड और विदेश यात्रा के प्रलोभन ने बन्द कर दिए हैं। दुखद है कि आजादी के पहले के हमारे अधिकांश स्वतंत्रता सेनानी पत्रकार सम्पादक थे, तिलक, गोखले, सावरकर, महावीर प्रसाद द्विवेदी से लेकर महात्मा गांधी तक। उनके मूल्यों से साहित्यिक पत्रकारिता भटक गई है।

मुख्य शब्द

पत्रकार, किसान, लेखक, बाजारवाद, शोषण, मूल्यहीनता.

सबसे पहले स्पष्ट कर दिया जाए कि साहित्यिक पत्रकारिता से अर्थ केवल कविता, कहानी से नही होता, न ही यह एक सीमित दायरे की मेन स्ट्रीम (यदि कोई है तो) से हटकर पत्रकारिता है। यह अपने आप मे मिथ है कि साहित्य और वर्तमान का कोई सम्बन्ध नही तो साहित्यिक पत्रकारिता तो आउटडेटिड हो गई, भूली बिसरी बात हो गई। जब एक थे धर्मवीर भारती या उससे पहले माखनलाल चतुर्वेदी, द्विवेदी, भारतेंदु हरिश्चंद्र, कमलाप्रसाद, ज्ञानरंजन, कमलेश्वर, सप्रे जी, मनोहरश्याम जोशी, प्रभाष जोशी, रविंदर कालिया, गिरधर राठी आदि। अब तो फास्ट न्यूज, फास्ट कविता, वेब पत्रिका और वेब वर्ल्ड, विज्ञापन, बड़ी कम्पनियां, लिट् फेस्ट, यूरिया के महंगे दाम करके 14 लाख का हर साल साहित्यकार को

अवार्ड दे रही कम्पनी, दांत दिखाता अवार्ड लेता पत्रकार, संपादक, जोड़तोड़ से पद्मश्री लेकर चुप बैठा, सृजन के नाम पर ढोंग करता तथाकथित लेखक का जमाना है। यह आंशिक सच भले ही हो पर यह मिथ ही यथार्थ है। वैश्विक बाजार और उत्तर आधुनिक समय और उसके दानवों जैसे हजार हाथ इसकी पड़ताल करता है यह आलेख।

साहित्यिक पत्रकारिता मिथ से यथार्थ

यह जानना दिलचस्प होगा कि साहित्य सृजन जब समाज और उससे जुड़े मानव के लिए है तो फिर साहित्यिक पत्रकारिता कैसे उससे अलग हो सकती है? वह मानवीय सरोकारों, उसके मूल्यों और बदलते समय की आहटो से उसे बाखबर रखती है। कई बार तो वह प्रतिरोध करती ताकतों के सामने पूरी शक्ति से अपना विरोध दर्ज कराती है फिर चाहे वह भोपाल गैस त्रासदी की आवाज हो, आदिवासियों के हक, किसानों की आत्महत्या, नोटा (किसी को वोट नही) या सद्भाव और भाईचारे के पक्ष में खड़े होना हो। वस्तुतः जब समाचार पत्र अपने मालिको की आवाज और उनके लाभ हानि, विज्ञापन दाताओं के चलते इन बातों को दबाते हैं तब साहित्यिक पत्रिकाएं पुरजोर ढंग से उनकी आवाज को उठाती हैं और मुझे यह कहने में कोई संकोच नही की इन पत्रिकाओ की आवाज सुनी जाती है। अपने सीमित संसाधनों के बावजूद यह अक्सर मजबूर, बेबस, पीड़ित के पक्ष में अपना बयान दर्ज कराती हैं। यह यथार्थता है जिसे मिथ मानकर एक पूरी पीढ़ी जीती रही और साहित्यिक पत्रकारिता, पत्रिकाओ से दूर हो गई। जबकि साठ के दशक में ज्ञानोदय, कल्पना, कहानी का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। फिर धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सारिका, कादम्बिनी, नवनीत तो हर घर मे जरूरी हो गई। लाखो की प्रसार संख्या के साथ यह पत्रिकाएं साहित्य, राजनीति, विचारोत्तेजक लेख आदि के साथ जन्मानस को छूने लगी। उसी समय लहर पत्रिका भी प्रकाश –मनमोहिनी जैन दौरा निजी व्यय से निकलती थी और लगभग सभी रचनाकार इसमे प्रकाशित होने के बाद ही देश मे चर्चित हुए। इनके संपादक समर्पित साहित्यकार रहे। धर्मवीर भारती, नन्दन, मनोहरश्याम जोशी, मृणाल पांडेय, शीला झुनझुनवाला, कमलेश्वर, अगेय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि लेखको ने बराबर समय और समाज मे सार्थक हस्तक्षेप किया। यही वजह रही कि लोगो का भरोसा और उनकी बुद्धि की खुराक को इन पत्रिकाओ ने बखूबी पूरा किया।

दरअसल मनुष्य सिर्फ काम ही काम करता रहेगा तो वह कैसे अपने लिए समय निकालेगा? उसके मानसिक, वैचारिक प्रश्नों का उत्तर कोंन देगा? इन बातों से दो चार होती साहित्यिक पत्रकारिता आगे बढ़ती गई और आ गया नब्बे दशक। खुली अर्थव्यवस्था, विश्व एक ग्राम में परिवर्तित हो गया। तब भी साहित्यिक पत्रकारिता ने नई करवट ली। हंस, राजेन्द्र यादव, समकालीन भारतीय साहित्य, गिरधर राठी, दिनमान, सुरेंदर प्रताप सिंह, धर्मयुग, मासिक हो गया, लोकायत, बलराम, आलोचना, नामवर सिंह, पूर्वग्रह, रमेश दवे आदि बराबर इस भूमंडलीकरण के खतरे से आगाह करते देखे गए। इसके साथ अपने समय के विभिन मुद्दो को इन पत्रिकाओ ने समय समय पर उठाया और उस पर बाकायदा लहर भी चलाई।

विमर्शों का दौर और साहित्यिक पत्रकारिता

स्त्री विमर्श, दलित विमर्श जब कोई हिंदुस्तान में जानता भी नही था तब राजेन्द्र यादव ने हंस के माध्यम से 90 के दशक से अगले 15 वर्षो तक इसको लेकर आंदोलन चलाया। हंस के माध्यम से यह दोनों विमर्श देश में वैचारिक हलचल के केंद्र में रहे और राजेंद्र यादव यह स्थापित करने में, अपनी कथनी करनी को एक रखकर सफल हुए। महिला लेखन के लिए उन्होंने हंस का बहुत बड़ा मंच दिया। आज की मैत्रयी पुष्पा, निर्मला भुराड़िया, गीताश्री, मृदला गर्ग, इला डालमिया, चित्रा मुद्गल, और भी बहुत सी लेखिकाओं को न केवल कहानी लिखने के गुर बताए,उनके मुद्दे उठाने को कहा और छापा, बल्कि बढ़कर उनमें यह आत्म विश्वास भरा की वह अपनी आवाज अपने मुद्दो, प्रश्नों को दबाएं नही उन्हें सामने लाए। उनके जगाए इस विमर्श का असर लगभग हर राज्य में हुआ और आधी आबादी में से कुछ में अपने होने, अपने अस्तित्व के प्रश्नों को रखने का आत्मविश्वास आया। हालांकि उसी समय ही मन्नू भंडारी, ममता कालिया, सोबती, अमृता प्रीतम, अर्चना वर्मा, राजी सेठ आदि भी काफी पहले से सक्रिय थी, उन्हें यह स्त्री विमर्श का पाठ एक पुरुष द्वारा उठाना रास नही आया। पर वह अपना काम कर चुके

थे और नई लेखिकाएं अपने नए नए विषयो और भाषा से सामाजिक कुरीतियों और अपनी यौनेच्छा को उजागर कर रही थीं। यह वह नई बाते थी जिसे पूर्वर्ती पीढ़ी छुपाकर रखे थी।

दलित विमर्श पर यह प्रश्न उठा कि दलितों पर विश्वसनीय ढंग से कोंन लिखेगा? अब तक ज्यादतर सवर्ण ही देखे गए, दुसरो के, यथार्थ को आधार बनाकर ही लिख रहे थे। इस पर नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव और अशोक वाजपई में लंबी बहस चली। नामवर जी ने जोर दिया कि अनुभूतिपरक लेखन जरूरी नही खुद जीकर किया जाए। वरना यह तो ऐसा ही है कि मौत का दृश्य लिखने के लिए लेखक को पहले खुद मरण करना हो। बड़े आलोचक के तर्कों को यादव के तर्क भोगे हुए यतार्थ को दलित जींवन की त्रासदियों, जुल्मों को कोंन बेहतर शब्द और आवाज दे सकता है? वह जो दूर से देखकर ही लिख रहा है और खुद भी इनके शोषण के लिए कहीं न कहीं जिमेदार है। या वह जो खुद सुअरों, मैला ढोते, मरे जानवरो की खाल उधेड़ते, मुसर खाते बड़ा हुआ ,जिसे कदम कदम पर तिरस्कृत किया गया, जिसे कलम चलाने के लायक भी नही समझा गया। वह क्यो न लिखे अपनी दशा और दुर्दशा पर? उसके शब्द उसकी अनुभूति ज्यादा नही बल्कि वही सही होगी क्योकि उसने यह सब भोगा है और आज भी भोग रहा है। उन्ही दिनो मंडल कमंडल भी चल रहा था तो उनके इस विचार को अपार समर्थन मिला। वंचित वर्ग ने इसे अपनी आवाज माना और यादव उनके पुरोधा बन गए। नाम के नही बल्कि बाकायदा उन्हें हंस पत्रिका का साहित्यिक मंच और देश भर में बोलने के अवसर दिए। उन्ही दिनों निकला हंस का दलित विशेषांक मील का पत्थर साबित हुआ। उस वक्त, नब्बे के दशक के नए दलित लेखक आगे जाकर बहुचर्चित हुए और साहित्य समाज की मुख्यधारा में उनकी वाणी को सुना गया फिर ओम प्रकाश वाल्मीकि की झुटन हो, रूपनारायण सोनकर की सूअरदान, तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया, मणिकर्णिका हो, सूरजमल चौहान, धर्मवीर जैसे दलित चिंतक हो। इनके समाज मे हलचल मचाने वाले लेखों, कहानियों को बराबर राजेन्द्र यादव ने हंस में प्रमुखता से छापा, फिर तो कई पत्रकार संपादक हरि नारायण कथादेश, रमणिका गुप्ता, युद्धरत् आम आदमी, वर्तमान साहित्य आदि इन दोनों स्त्री और दलित विमर्शों को अपने यहां छापने लगा।

साहित्यिक पत्रकारिता का यह ऐसे उद्धरण हैं जिन्होंने हिंदुस्तान के जनमानस की सोच ही नही बदली बल्कि दलितों को आवाज दे दी। उनमें व्याप्त आक्रोश को स्वर साहित्य और पत्रिकाओ ने दिए वह समाचार पत्र कभी भी नही दे पाते। उधर महाराष्ट्र में शरण लिम्बाले, अक्करमाशी से अपने अवैध संतान होने और भूखे रहकर, मरे जानवर की खाल उतारने से लेकर पशु के गोबर से अन्न के दाने चुनकर सुखाकर खाने की वर्षो चली प्रक्रिया को लिख रहे थे, बेबी अपनी वेश्या की संतान होने को किताब में लिख रही थी। उदयप्रकाश, अखिलेश, टेकचंद, जैसे फैशनेबल लेखक बन बैठे जो हवा का रुख देख दलितों की बात करके उन्हें सवर्णों की बेटियो,महिलाओ के साथ जबर्दस्ती करने और अपना शिकार बनाने जैसी कहानियां लिखने लगे। पर यह दौर बीत गया 21वी सदी आते आते। उस वक्त देश मे नए लेखको की पूरी पीढ़ी को तैयार करने और नए मुद्दो को उठाने के लिए साहित्यिक पत्रकारिता, जिसमे लघु पत्रिकाओ की बराबर और महती भूमिका रही वह तैयार थीं।

सूचना क्रांति का विस्फोट बनाम कार्पोरेट बनाम साहित्यिक पत्रकारिता

21वी सदी दो चीजो के लिए जानी जाती है, एक सूचना क्रांति का विस्फोट और दूसरे विचारों और विमर्शों के खात्मे का दौर। दरअसल बाजारवाद हर जगह जड़े जमा चुका था। उसे अपने प्रोडक्ट और अपनी छवि चमकानी थी। यह वह दौर था जब हुंडई, ऑडी, मर्सिडीज बेंज, पजेरो से लेकर रिबॉक, आदि ब्रांड सब भारत के शहरों में दिखाई दे रहे थे और समाचारपत्र अपनी प्रतिबद्धता इन बड़ी कम्पनियों के प्रति दिखा रहे थे। अखबारों से सामाजिक सरोकार तो कबका गायब हो गया था, अब किसान, मजदूर, आदिवासी, मूल्य (अंसन मे), और आम आदमी गायब हो गया था। अखबारी पत्रकारिता को अब बाजार गाइड ही नही कर रहा था बल्कि अपने अनुसार ही लिखवा रहा था। ऊपर से न्यूज चौनल्स की बाढ़। इसके मध्य में भी कुछ संपादक थे जो समाज और जीवन के प्रति अपनी जिमेदारी निभा रहे थे। शुक्रवार के विष्णु नागर, जनसत्ता ओम थानवी, जागरण राजेन्द्र रॉव, राज पत्रिका गुलाब कोठारी, भास्कर, श्री अग्रवाल, नई दुनिया छजलानी आदि अपने अखबारों में साहित्य के लिए पृष्ठ रखते और छमाही

या वार्षिक अंक भी निकालते थें जिसमे साहित्य और समाज के प्रति अपनी प्रतिबद्धता का निर्वहन पाठको के लिए करते थे।

लेकिन जो नुकसान होना था वह हो गया था। पाठक और विचारक, लेखक कम थे। मुद्दे थे परन्तु उन पर आंदोलनों का अभाव था। समाचार पत्र अलग खेमो में थे जो विरोधी खेमे की कंपनी दौरा उड़ीसा, छत्तीसगढ़ से आदिवासियों को खदेड़कर उनके जंगल, जमीन हथियाकर अरबो रुपए की कीमती धातुएं दोहन कर रहे थी। उसकी न्यूज यहाँ तो मैनेज हो जाती पर वर्ल्ड प्रेस और इंटरनेट नही छोड़ता। तो बदनामी होती और तब प्रारम्भ हुआ हिंदुस्तान में लिटेरेचर फेस्टिवल नामक तमाशे का दौर। लेखको संपादको में से कई अभी भी थे जो जल, जंगल, जमीन और जींवन की बात करते थे, लिखते थे और उसका असर समाज, विशेषकर एलीट वर्ग पर पड़ता था। तो यह तमाशे प्रारम्भ हुए जयपुर लिट् फेस्ट से। हिंदी के एक जाने माने कार्पोरेट कल्चर वाले कवि को राज्य संयोजक बनाया गया। उसने भी वफादारी दिखाई और अपने हिंदी भाषी और राजस्थानी लेखको का प्रवेश मंच पर वर्जित करवा दिया। यह एक तबके के जो सुविधाभोगी था के क्षरण की बानगी थी। कुछ वर्षो तक बेन रहा। फेस्ट जानबूझकर विवादों में रहा और अंतर्राष्ट्रीय अवार्ड भी देता रहा। रियो टिंटो, मेदांता, पेप्सी आदि जो पूरे विश्व मे श्रमिको का शोषण करती थीं, वह देश विदेश के चुनिंदा बुद्धिजीवीयो को फ्री ड्रिंक, होटल, हवाई यात्रा और मोटी उजरत देकर उनकी कलम को चुप कराती रही। इसका विरोध इस बार दो वर्गों ने किया। साहित्यिक पत्रकारिता, लघु पत्रिकाओ आदि के संपादको ने इस कॉरपोरेट तमाशे की खुलकर आलोचना की। दूसरे कुछ लेखको ने जो पीने खाने वाले वर्ग के थे, ने आवाज उठाई। कुछ वर्षो बाद वह इसी तमाशे के मंच पर कौए की तरह गर्दन अकड़कर बैठे नजर आए, बड़े ही गंभीरता से। यह यथार्थ रहा परन्तु साहित्यिक पत्रकारिता की यह परंपरा है कि यहां प्रतिबद्ध और जीवट वाले लोग हर युग मे रहे। तो हेतु भारद्वाज, अक्सर, व्यंग्य यात्रा, प्रेम जनमेजय, पाखी, प्रेम भारद्वाज, हंस, राजेंद्र यादव, प्रेरणा, अरुण तिवारी, अक्षरा, कैलाशचंद्र पंत, वागर्थ, एकांत श्रीवास्तव, समकालीन भारतीय साहित्य, तत्कालीन संपादक प्रभाकर श्रोत्रिय आदि ने इस आडम्बर की आड़ में खून से रंगे हाथों वाली कम्पनियों से अवार्ड और साहित्य की तिजारत कर रहे तथकथित अवसरवादी लेखको पर सवाल उठाए। असर हुआ और लोग दूर हटे परन्तु अभी भी पेज 3 टाइप राजनेता, फिल्मी गीतकार आदि बराबर जाते है मजलुमो पर, इश्क पर, आदिवासियों की हालत पर ड्रिंक की चुस्कियों पर चर्चा करते हैं।

निष्कर्ष

अभी भी प्रतिबद्ध साहित्यिक पत्रकारिता का एक बड़ा वर्ग ऐसा है जो समाज, इंसान और साहित्य के मध्य सामंजस्य बिठाए हुए चलता है। उसकी निष्ठा इसमे है कि विचार और विमर्श, अध्ययन और किताबो के साथ महत्वपूर्ण विषयों पर आम आदमी जागरूक हो। अपने परिवेश को जाने और उसके सवालों और चुनौतियों को सामने रखे, ऐसी साहित्यिक पत्रकारिता है। इसी को लेकर विगत वर्षों में समानांतर लिट् फेस्ट आरंभ हुआ लेकिन वह चूंकि अपने उद्देश्यों में स्पष्ठ नही था तो वह चल नही सका, हालांकि प्रयास जारी हैं। परन्तु पत्रकारिता में आज आवश्यक्ता है साहित्य को जानकर, भाषा के मुहावरे से परिचित पीढ़ी की। जिसके सरोकार लोक और उसकी समस्याओं के साथ खड़े होने के हो। यह भले ही मिथ लगता है क्योकि यह पाठ्यक्रम में ही नही। परन्तु साहित्य, सोच, भाषा, दर्शन, किताबो के साथ इस पर पाठ्यक्रम जल्द से जल्द बनाकर शामिल करने की आवयश्यक्ता है। कुछ बातें जिंदगी का अनुभव भी सिखाता है और वही आज की सबसे बड़ी जरूरत भी है कि साहित्यिक पत्रकारिता नई ऊंचाइयों के साथ और बढ़े। हर प्रमुख अखबार, चैनल भी सप्ताह में एक दिन, एक पूरा पेज, चैनल एक कार्यक्रम हर हफ्ते, किताबो, साक्षात्कार, लेख, काव्य के नाम करे। इसके लिए प्रबुद्ध युवा लेखकों को अपने यहां आमन्त्रित करे जिससे साहित्य, समाज और जन के सरोकार हर घर तक पहुंचे। वैचारिकी की प्रक्रिया चले। फिराक की इन पंक्तियों के साथ विदा, 'जब तक जगी न हो जमीर की लौ/आंख को रोशनी नही मिलती। गुजिश्ता अहद की यादों को फिर करो ताजा/बुझे चराग जलाओ बहुत अंधेरा है।'

सन्दर्भ सूची

1. इफको यूरिया कम्पनी, हर साल साहित्यकारों को 10 लाख से 15 लाख का अवार्ड देती है। जिसका यूरिया के बैग की कीमत आम किसान की पहुंच से बाहर है।
2. प्रेरणा, संपादकीय, अरुण तिवारी, भोपाल, जून 2012
3. हंस, अगस्त, 1994 महिला लेखन अंक, युवा कथाकार, अंक सितंबर 1998
4. पीली छतरी वाली लड़की,उदयप्रकाश, वाणी प्रकाशन, 2008
5. अपनी बात, अरुण तिवारी, 2019, प्रेरणा प्रकाशन, भोपाल
6. छत्तीसगढ़ मित्र, सुशील त्रिवेदी, जनवरी 2020

****